P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-9*(Part-1) May- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

21वीं शताब्दी के उपन्यासों में कुण्ठा और संत्रास (नारी पात्रों के विशेष सन्दर्भ में)

कविता चौहान
शोधार्थी,
एम.ए., एम.फिल, पी.एच.डी
हिन्दी विभाग,
यमुना नगर, हरियाणा,
भारत

सारांश

मानव व्यक्ति के विकास में परम्परा का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। व्यक्ति को परम्परा से अलग करके परिभाषित नहीं किया जा सकता। भारतीय नारी अधिकांश रूप में परम्परा और संस्कृति के अनुरूप रहती है। भारतीय परम्परा में विवाह और पति को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता है। भारतीय समाज में नारी सदैव पुरुष के अधीन रही है। पुरुष के अधीन रहकर पुरुष व्यवस्था की बंधक बनकर रहना ही प्राचीन परम्परा रही है। नारी के प्रति आदर्शात्मक दृष्टिकोण एवं उससे आदर्श की अपेक्षा का मूल मातृसत्तात्मक समाज से ही माना जा सकता है। पितृसंत्रात्मक समाज में नारी के अधिकार तो कम हो गए हैं पर उससे आदर्श की अपेक्षाएँ बढ़ी हैं। आदिम युग के पश्चात् सामंत युग में भी यही स्थिति रही।

मुख्य शब्द : पूँजीवाद, सहकर्मिणी, पितृसत्तात्मक, मातृसत्तात्मक पंगु, रूढ़िवादिता, भगिनी, कुंठा, संत्रास, थुलथुल, अवसाद, बलात्कार, दैहिक, वेश्यावृत्ति, फरिश्ते, नेताजियो, खलल, सेंध, मोंड़ी

प्रस्तावना

पूँजीवाद युग के आगमन से नारी की स्वतन्त्रता और उसके समानाधिकार के रूप में नये मूल्य समाज में आए है। फिर भी सामान्यतः भारत में नारी सम्बंधी आदर्शों में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। वे मानो हमारे जातीय संस्कार के अंग बन चुके हैं। सामंत युग की दासी नारी आज सहयोगिनी और सहकर्मिणी बन गई है। उसे मर्यादित स्वतन्त्रता और विविध सामाजिक अधिकार भी प्राप्त हुए हैं। किन्तु पतिव्रत के आदर्श लगभग वैसे ही है।''[1] नारी के परम्परागत रूप को ही आदर्श मानकर चलने वाली महिलाओं का बहुत बड़ा वर्ग समाज में विद्यमान है। आज नारी स्वतन्त्रता की बात समझने की चेतना कुछ हद तक विकसित हुई है।

इक्कीसवीं शताब्दी में नारी

आधुनिक नारी पढ़ी लिखी होने के कारण इस बात से परिचित है कि समाज की विभिन्न समस्याओं से किस प्रकार समझौता करना चाहिए। ''वह अपूर्ण, कुण्ठित, घुटन, अत्याचार, अतृप्ति और अपमानित जीवन स्वीकार नहीं करती। क्योंकि आजकल की नारी में विद्रोह की भावना कूट–कूट कर भरी है। वह अपने आपको पुरुष से कम नहीं समझती है। वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्होंने समाज के हर क्षेत्र में प्रवेश किया है। हर एक समस्या का भी समाधान ढूँढ निकाला है।''[2] आज नारी घृणा अपमान, उपेक्षा स्वीकार नहीं करती। वह इनसे अपने आपको मुक्त करने के लिए विद्रोह कर रही है। आधुनिक युग में भी छल कपट, धोखा, स्वार्थ, भौतिक सुख की तीव्र इच्छा आदि बुराईयाँ दिनों–दिन बढ़ रही हैं। जब तक नारी को समान न्याय देने वाली व्यवस्था निर्मित नहीं होगी, तब तक यह विद्रोह चलता रहेगा।''[3]

प्राचीन से लेकर इक्कीसवीं सदी तक नारी पुरुष प्रदान समाज में कुंठित व संत्रास को झेल रही है। मध्यकालीन परिस्थितियों की विवशता आज रूढ़िवादित बनकर नारी को जकड़े हुए है। इसी परम्परा की दुहाई देकर पुरुष नारी की शक्ति को पंगु तथा सामर्थ्य को निर्जीव बनाए हुए है। वे नारी को आगे बढ़ने का अवसर नहीं देना चाहते।

इक्कीसवीं सदी में भी नारी शिक्षित होने के बाद भी अपने अधिकारों से वंचित है। रोमी शर्मा नारी के कर्त्तव्य एक और अधिकार के विषय में लिखती है ''हमारे यहाँ जितने अधिकार हैं वे सब पुरुषों के हैं, जितने कर्त्तव्य हैं वे सब नारी के अधिकारों का स्थानांतरण पुरुष से पुरुष तक होता है। सम्पत्ति में प्रायः नारी को हिस्सा मिलता है।''[4] इक्कीसवीं सदी की लेखिका सोना चौधरी के नारी सम्पत्ति के अधिकार के विषय में विचार इस प्रकार है ''हमारा समाज पुरुष प्रधान

समाज है। यहाँ बेटियों को बराबर के हक सिर्फ कागजों पर है। अभी भी उनको सम्पत्ति में हक नहीं मिला है। उनके हस्ताक्षर करवा लिए जाते हैं। मुझसे भी हस्ताक्षर करवाए गए हैं। सम्पत्ति में हक नहीं मिला। ये शिक्षा का हिस्सा होना चाहिए कि सम्पत्ति में बेटियों का अधिकार है।''[5]

इस प्रकार इक्कीसवीं सदी में भी नारी अधिकारों से वंचित है। आज की नारी आन्तरिक स्वतन्त्रता का अहसास नहीं कर रही है। क्योंकि नारी आज भी यदि किसी स्थान दफ़्तरों, घर, सड़क, दुकान आदि स्थानों में सुरक्षित महसूस नहीं करती है।

पारिवारिक सम्बंधों में कुण्ठित व संत्रस्त नारी

नारी परिवार की प्रमुख सदस्या है। वह परिवार के अनेक रूपों में जुड़कर अपने दायित्व का निर्वाह करती हुई समाज में आदर का पात्र बनती है। कहीं वह माता है तो कहीं पत्नी, कहीं भगिनी है तो कहीं पुत्री, कहीं सेविका है तो कहीं तपस्विनी। इस तरह के विविध रूप हैं। आजादी के बाद बदलते परिवेश में नारी चेतना का स्वरूप भी कई परिदृश्यों में दिखाई देता है। हमारे हिन्दी समाज में संयुक्त परिवार की प्रथा रही है, लेकिन औद्योगीकरण एवं पाश्चात्य प्रभावों के कारण संयुक्त परिवारों की नींव हिल गई। आर्थिक विषमताओं के कारण जीवन मूल्यों में इतना बड़ा परिवर्तन आ गया। अब संयुक्त परिवार समाप्त हो रहे हैं।

संयुक्त परिवार

संयुक्त परिवार में रहकर नारी को कुण्ठा सहन करनी है। 'टूटने के बाद' (संजय कुदन) उपन्यास में बिमला और रमेश पति–पत्नी हैं। दोनों ही पटना में रहते हैं। रमेश और बिमला दोनों ही अपने बच्चों के भरण–पोषण के लिए काम करते हैं। बिमला शिक्षित है। रमेश नौकरी को छोड़कर मंत्री जी के साथ दिल्ली चला जाता है। बिमला, रमेश के चले जाने पर अभय और अप्पु के साथ रहती है। लेकिन रमेश के दूसरी औरत के साथ सम्बंध होने के कारण बिमला कुण्ठित रहने लगते हैं। लेकिन वह संत्रस्त भी है क्योंकि वह नहीं चाहती कि मेरे बच्चों को हम दोनों की वजह से कोई कष्ट सहन करना पड़े। अपनी एक कर्मचारी आरूषि के कारण वह अपनी पत्नी को उसके अस्तित्व को नकारते हैं। वह दोनों अपने जीवन को सुखी समृद्धिशाली बनाना चाहते थे, लेकिन अर्थ के चक्कर में आपसी प्रेम विश्वास गायब हो गया। रमेश जब अपने घर जाता है तो उसकी पत्नी बिमला उससे सीधा मुँह बात नहीं करती है। वह सही ढंग से उसकी किसी भी बात का जवाब नहीं देती है। रमेश अपनी पत्नी को कहता है। और वह कुण्ठित होने के कारण जवाब देती है।

उन्होंने फिर कहा समझ नहीं पा रहा मैं क्या करूँ?''[6]

समझना क्या है देहरादून जाइए और अपने काम पर लगिए।''

इस प्रकार टूटने के बाद (संजय कुन्दन) उपन्यास में नारी कुण्ठित होते हुए संत्रस्त जीवन जी रही है। संत्रत होकर वह तलाक भी नहीं ले पा रही है। वह शोषित है। उसी तरह ही कमला–अजय भी अपने दाम्पत्य जीवन से असंतुष्ट हैं। बिमला को इस प्रकार दुःख सहन करना पड़ता है। डॉ0 मुक्त त्यागी का कहना है कि हमारे परम्परागत मूल्यों के आधार पर स्त्री को कदम–कदम पर शोषण व उत्पीड़न सहना पड़ता है। उसको पतिव्रता नारी बनने के लिए गांधारी के समान अंधा होना पड़ता है।''[7]

नारी के साथ होने वाले भेदभाव में तसलीमा नसरीन कहती है ''ये पौधे भी पीपल की तरह बढ़ सकते हैं लेकिन मिट्टी भी है उसमें कंकड़, पत्थर ही ज्यादा है। पानी नहीं, खाद नहीं है। इसलिए पौधे बड़े नहीं होते।''

अगनपाखी (मैत्रयी पुष्पा) उपन्यास 2001 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास की प्रमुख पात्र भुवन है। भुवन और उसकी बहन के बेटे चन्दर के साथ हमउम्र होने के कारण प्रेम है। नानी के पता चलने पर चन्दर अपने गाँव बरुआ सागर लौट आता है। भुवन का जीजा भुवन का विवाह विजय सिंह जो उसकी के गाँव का है। उसके साथ करवा देता है। विजय सिंह शारीरिक और मानसिक रूप से बीमार है। वह संयुक्त परिवार में अपने पति विजय सिंह के साथ रहते हुए अनेक समस्याओं का सामना करती है। लेकिन उसे ससुरालवालों की यातनाओं का सामना करना पड़ता है। भुवन अपने मायके लौटने पर अपनी माँ से बहस करती है। वह अपनी माँ से कहती है–

> ''क्या देख कर गर्रा गई? क्या है वहाँ सुख साकों पर बिक जाऊ? पागल की सेवा करना सुख साकें होता है तो किसी पागल खाने में नौकरी कर लेती।''[8]

संयुक्त परिवार में रहकर भुवन को कुण्ठा भरा जीवन जीना पड़ता है। भुवन के पति को उसके जेठ अजय सिंह द्वारा मरवा दिया जाता है। भुवन को भी अजय सिंह धन का लालच में सती होने का दबाब डालता है। इस पर अरविन्द जैन सही लिखते हैं कि परिवार के भीतर बाहर सुरक्षा और संरक्षण की प्रक्रिया में औरतें पुरुषों के हाथों जब बार–बार छली जाती हैं तो अपने–अपने मनचाहे या उपलब्ध रास्ते खुद चुनती है। भुवन भी ऐसा करती है। कुंवर अजय सिंह की चाल समझ जाती है। चन्दर और पुजारी की सहायता से वह भाग जाती है। भुवन का जेठ उसे सती करना चाहता था। लेकिन जो भुवन का लालची जेठ सोचता है कि वह डूब कर मर गई। भुवन चार महीने बाद कुंवर अजय सिंह के विरोध में अपनी हिस्से की जायदाद के लिए कोर्ट में जा खड़ी होती है। डॉ0 मुक्ता त्यागी लिखती है कि ''वास्तव में सती होना पतिव्रता का ढोंग नहीं बल्कि एक सामाजिक दबाव है।''[9] जिसके कारण कष्टों से निजात पाने के लिए स्त्री एक पत्नी, एक विधवा स्वयं को जलाने के लिए मजबूर है।

एकल परिवार

'कुन्तो' (भीष्म साहनी) उपन्यास में संयुक्त परिवार का वर्णन मिलता है। इस उपन्यास में नारी की समस्याओं को दिखाया गया है। कुन्तों उपन्यास में कुन्तों का पति जयदेव, सुषमा का पति गिरीश, थुलथुल का पति धनराज, सुषमा, नसीबो प्रमुख पात्र है। कुन्तो संयुक्त परिवार में रहकर अनेक समस्याओं का सामना करती है। कुन्तो की शादी के पश्चात् वह कुछ ही समय तक अपने वैवाहिक जीवन का सुख भोग पाती है जब उसे पता

चलता है कि जयदेव अपनी मौसेरी बहन को चाहता है तो वह टूट जाती है। एक दिन प्रोफेसर साब कुन्तो से कहता है कि यही उस के लिए जयदेव को अपने नजदीक लाने का अच्छा मौका है तो कुन्तो कहती है।

''सुनहरी मौका क्या होता है, भईया? उसने मन ही मन कहा था। क्या था जो मेरे व्यवहार में पहले नहीं था और अब होना चाहिए था। सोचते, हुए कुन्तो की आँखो में पानी भर आया था। इसका दिल जीतने भर आया था। इसका दिल जीतने क लिए मुझे कुछ विशेष करना होगा, क्या इसका मन–रिझाने के लिए तरह–तरह के श्रृंगार करूं? क्या इसे अच्छे–अच्छे व्यंजन बनाकर खिलाया करूं। सोचते–सोचते कुन्तो सचमुच रो पड़ी थी।''[10]

कुन्तों अपने पति की वजह से मानसिक सन्तुलन खो देती हैं। और वह नींद में भी चलने की बीमारी से ग्रस्त है। मानसिक तनाव को वह झेल नहीं पा रही थी। इस प्रकार कुन्तो कुंठित रहकर और संत्रस्त रहकर जीवन जीते, हुए एक दिन अपार दुख के साथ संसार छोड़कर चली जाती है। कुन्तो हमेशा ही कभी किसी से शिकायत नहीं करती थी। उसके शरीर को दुख रूपी कीड़ा घायल कर चुका था। कुन्तो के जीवन में कुंठित तथा संत्रास के कारण अवसाद की स्थिति पैदा हो जाती है। कुन्तो मानसिक अवसाद से पीड़ित होने के कारण मर जाती है। मैत्रेयी पुष्पा लिखती है –

''भीष्म साहनी के 'कुन्तो' उपन्यास में थुलथुल को भी विवाह के सात वर्ष तक विधवा की तरह व्यतीत करने पड़ते है। जब सात वर्ष बाद उसका पति विदेश से लौटता है तो वह खुश होती है। लेकिन पति उसे प्रेम नहीं करता है। वह तो सिंगापुर में रहते हुए मोना नाम की स्त्री के साथ प्रेम संबंध बनाता है। थुलथुल के कोशिश करने पर जब उसका पति उसके पास नहीं रहता है वह कुंठित जीवन जीने पर मजबूर है। लेकिन अन्त में थुलथुल स्वयं को लगा लेती है और अपनी जीवन लीला समाप्त कर लेती है। थुलथुल के हरे रंग के दुपट्टे के पीछे आगे की लपट थुलथुल के शरीर के साथ चिपटी हुई थी और एक साँप की तरह बलखाती हुई उसी पीठ पर चढ़ रही थी। कमरे के पास तक पहुँचते हुए थुलथुल की बाँहे आकाश की ओर उठी हुई थी। मुँह खुला हुआ था और बड़ा भयानक लग रहा था। केश जलने लगे थे और आग के शोलों में कुछ था जो स्याह पड़ता जा रहा था।''

इस प्रकार 'कुन्तों' उपन्यास में नारी के द्वारा प्रयत्न करने पर भी वह स्वयं को कुंठा और संत्रास से दूर नही रख पाई। और इच्छाओं की पूर्ति में बाधा आने के कारण जो दुख पीड़ा को वह झेल नहीं पाई और न ही वह अपनी इच्छा पूरी कर पा रही थी इस कारण वह स्वयं को आग लगा लेती है।

सामाजिक संबंधो में कुंठित व संत्रस्त नारी

सामाजिक पितृक मर्यादाओं में स्त्री इतनी जकड़ी हुई है कि उसके सपने आदर्श कल्पनाएं छिन्न–भिन्न हो गई वह घर के चूल्हे चौके में कैद होकर रह गई। समाज ने उसके काम निर्धारित कर दिये। उसका काम केवल संतान पैदा करना। उनकी देखभाल करना और समूची पीड़ा व शोषण को झेलना है।

पुरूष प्रधान समाज

नारी को पुत्र की प्राप्ति न होने पर दोष दिया जाता है। नारी को आज भी वह सम्मान नहीं मिला जो उसे मिलना चाहिए। समाज में पुरूष प्रधानता है। पीली आँधी उपन्यास में सोमा के माध्यम से दहेज प्रथा रूपी दानवी बुराई को भी दर्शाया है। डॉ0 मुक्ता त्यागी लिखती हैं– ''स्त्री को तो जन्म से ही भेदभाव की रणनीति का सामना करना पड़ता रहा है। उसकी माँ पुरूष मानसिकता को आत्मसात करते हुए है। और साथ ही पुरूष के अधिकार में है। और पिता तो स्वयं पुरूष है अतः स्त्री के सारे मार्ग उसके विरूद्ध है। स्त्री के साथ पुरूष सत्ता की लिंगभेदी राजनीति उसके जन्म से पूर्व ही प्रारम्भ हो जाती है। कन्या को जीवन देने में भी भेदभाव अपनाते है। पहले समय में कन्या का जन्म होने के बाद उसे भूखा रखकर या अन्य उपायों द्वारा भी मार दिया जाता था। आज के आधुनिक युग में भी विज्ञान की सहायता से मादा भ्रूण की हत्या कर दी जाती है। क्योंकि पुरूष को वंश चलाने के लिए पुत्र चाहिए''।[11]

कंपनियों में बोस जिस प्रकार परफारॅमेन्स रिव्यु प्लान करते है। जिससे आपके काम व्यवहार को परख सके। अमेरिका के एक पुरूष ने इसे निजि जिंदगी का हिस्सा बना डाला। ''ओल्फैक लिखते है– मैंने उनकी कमियां आइडेटिफाई कर ली है। इसलिए 2017 के लिए परफॉमेंस प्लान भी बना लिया है। इसके लिए गाइड लाइन तय की है। इसमें पत्नी को हिदायत दी गई है कि मायके वालो को स्पष्ट करना होगा कि वे 24 घंटे से ज्यादा मेरे घर पर न रूके। मेरा घर होटल नहीं है। वे यदि 24 घंटे से ज्यादा रूकते है, तो पैसे चुकाने होगे। लेकिन खाना–पीना शामिल नहीं होगा। खाते–पीते है तो अलग से पैसे दें, पत्नी की फिल्म देखने की आदत का भी प्लान में जिक्र है लिखा है अपनी आदत सुधार लो। मैं हमेशा फिल्में नहीं दिखा सकता।''

इसे पढ़कर या समझ कर तो ऐसा लगता है भारत में यदि इसे अपनाया जाए तो महिलाए इसे ठीक नहीं समझेगी क्योंकि यहाँ पर नारी जब शादी करके ससुराल आती है तो अपने पति, सास, ससरु, देवर आदि की सेवा करती है भारत एक पुरूष प्रधान देश है। यह परफॉमेंस रिव्यु प्लान यदि पति और पत्नी दोनों के लिए होने चाहिए। 'परफॉरमेस रिव्यु प्लान' के साइड इफैक्टस भी बताए जा रहे है। भारत जैसे देश में शायद ही कोई इस प्लान को पसन्द करे। पुरूष प्रधान देश होने के कारण भयानक समस्याएं जन्म ले सकती है।''[12]

बलात्कार

महिलाओं के प्रति होने वाले अमानुविक अत्याचारों में बलात्कार एक वर्तमान समय की भयंकर समस्या है। बलात्कार नारी के अस्तित्व व गरिमा को कुचल डालता है। बलात्कार नारी को सामाजिक तथा भावनात्मक रूप से स्त्री को भीतर तक तोड देता है। भारत वर्ष में इक्कीसवीं सदी में तेजी से बढ़ती बलात्कार की घटनाएं इस ओर संकेत करती है कि बलात्कार के प्रति सामाजिक तथा कानूनी स्तर पर भर्त्सना तथा सजा

का अभाव है। राम आहूजा का कहना है कि ''गरीब लड़कियाँ ही अकेली बलात्कार का शिकार नहीं होती अपितु मध्यम वर्ग की कर्मचारियों के साथ भी मालिक द्वारा लैंगिक अपमान किया जाता है, अपराध संदिग्ध महिलाओं के साथ ठेकेदारों और बिचौलियों द्वारा। यहाँ तक कि बहरी और गूंगी, पागल और अंधी और भिखारिनी को भी नहीं छोड़ा जाता।''[13]

हमारे देश में 2012 में दामिनी कांड के बाद कुरूक्षेत्र में भी ऐसा ही कांड हुआ। लेकिन यदि हमारे कानून में बलात्कार के लिए सख्त सजा होती तो ऐसी घिनौनी हरकत कुरूक्षेत्र में भी देखने को न मिलती है। न ही जुलाई 2016 में घटित होती।

'दामिनी जिन्दा है, (गोपाल कृष्ण शर्मा 'फिरोजपुरी) उपन्यास में लेखक ने यह भी दिखाया है कि पुलिस, प्रशासन, मंत्री कोई भी पीड़िता का साथ नहीं देते हैं। लेखक ने उपन्यास में केरल की घटना को दर्शाया है। जो एक भाई अपने बहन के साथ हुए बलात्कार की रिपॉर्ट दर्ज करवाने जाता है। तो सवाल के साथ अनेक समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है।

पुलिस कहाँ–कहाँ जाए, किस–किस को रोके तुम्हें अपनी बहिन का ख्याल खुद रखना चाहिए। थानेदार ने डाँटा।

उसका सिर न चाट जा कर मुंशी को अर्जी दे दे वह लिखा लेगा तेरी रिपोर्ट। आदेश पाकर युवक मुंशी के पास चला गया था।

अर्जी ऐसी नही स्वीकार की जाती, साथ कोई एल.पी.सी. भी लगाओ। मैं समझा नहीं जनाब एल.पी.सी. का मतलब है। कोई 500 हजार या नकद नाम। मुंशी ने बात को स्पष्ट किया।

इस प्रकार 'दामिनी जिन्दा है'[14] उपन्यास में कानून की लम्बी प्रक्रिया में तरुण की बहन को न्याय नहीं मिला। और तरुण की बहन कुण्ठित जीवन जी रही थी, लेकिन संत्रस्त होने के कारण वह आत्म हत्या अपने आत्म सम्मान के लिए कर लेती है।

'दामिनी जिन्दा है' गोपाल कृष्ण शर्मा 'फिरोजपूरी' उपन्यास में लेखक ने तीन लड़कियों के साथ हुए बलात्कार को दर्शाया है। केरल की घटना, गीता चोपड़ा और दामिनी ये तीनों ही घटनाएँ हमारे दिलों को दहला देने वाली हैं। गीता चोपड़ा की घटना 1970–1980 के दशक में घटित घटना है। लेकिन उस समय की सरकार द्वारा नारी हित के लिए कड़े कानून नहीं बनाए गए। तभी तो नारी को इक्कीसवीं सदी में भी बलात्कार की भयानक समस्या से गुजरना पड़ रहा है।

'दामिनी' जिंदा है। उपन्यास में 16 दिसम्बर 2012 को रात को घटित सच्ची घटना को भी दर्शाया है। उस रात दामिनी के साथ जो हुआ लेखक ने दर्शाया है। ''बालों से पकड़ कर घसीटते हुए वे दामिनी को पिछली लम्बी सीट पर ले गए थे। दामिनी का विरोध करने पर उसकी तेजधार हथियार से पेट पर वार किया। सिर के पिछले हिस्से में चोट दी जिससे दामिनी मुर्छित हो गई। अब बस दौड़ती जा रही थी। बदमाश उसके कपड़े उतारकर मुँह काला कर रहे थे।''[15]

इस प्रकार इस शर्मनाक घटना को अन्जाम देने वालों को यदि कानून सख़्त से सख़्त सजा दे तो शायद इस भयानक समस्या का समाधान हो सकता है। सरकार को ऐसे कानून बनाने चाहिए कि बलात्कारी की रूह काँप उठे। लेकिन दामिनी दिल्ली घटना के बाद हरियाणा में 2012 से 2016 तक बलात्कार की अनेक घटनाएँ घटी। यदि सख़्त कानून बने होते शायद ऐसा ना होता।

तिरिया जात न जाने काई (अनिता सभरवाल) उपन्यास में गौरा का बलात्कार रजनीश के द्वारा किया जाता है जिस कारण उसको अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इस उपन्यास में गौरा व चंदा के साथ भी बलात्कार किया है। चंदा गरीब परिवार की लड़की थी। ''गरीब परिवार की एक जवान होती लड़की थी चंदा। हर घर में ऐसी चंदा होती है और हर चंदा की किस्मत कमोबेश एक जैसी ही होती है। एक शाम को वह लकड़ियाँ बीन कर वापिस आ रही थी। दो लड़के उसे उठाकर ट्रैक्टर की ट्राली में डालकर ले गए और रात भर लुटती रही। सुबह जाने कैसे चलकर वह घर पहुँची। उसके हाथ में एक सौ रुपये का नोट भी था। पर यह नोट उसके किसी काम नहीं आया। कैसे और किससे बचाता उसे उसने रोते–रोते बताया था कि उसके साथ क्या हुआ था''।[16]

वर्तमान युग में लेखिका युग की परिस्थितियों से प्रभावित होकर समस्याओं का चित्रण करती है। आज भी नारी के शोषण के दृश्य आम जिन्दगी में देखे जा सकते हैं। यह शोषण आर्थिक, दैहिक और मानसिक स्वरूप का है। धूर्त पुरुष उसके श्रम का शोषण अनादि काल से करते आ रहे। नारी–शोषण के लिए पुरुषों को जिम्मेदार ठहराते हुए डॉ0 निर्मला जैन लिखती है– कड़वी सच्चाइ यह है कि पुरुष प्रधान समाजों में सदियों से महिलाओं का दमन और शोषण होता आ रहा है। समाज में भूमिका और उनकी सामाजिक हैसियत का निर्धारण पुरुषों के द्वारा हुआ है।''[17]

इस प्रकार नारी को बलात्कार के कारण शारीरिक, मानसिक तनाव को सहन करना पड़ता है। वह कुण्ठित होकर समाज में रहती है तो उसे संत्रास या डर जीने नहीं देता है। अन्त में वह आत्महत्या भी कर लेती है। नारी की दयनीय स्थिति होने का कारण तो साफ दिखाई देता है। हमारे समाज में बलात्कार जैसे अपराध के लिए सख़्त कानून नहीं हैं।

कन्या भ्रूण हत्या

प्रकृति का अपना एक नियम होता है। जिसके द्वारा वह इस सृष्टि का संचालन करती है और उसमें संतुलन बनाए रखती है, लेकिन मनुष्य ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए उस नियम के साथ खिलवाड़ करना शुरु कर दिया। इस समस्या ने ऐसा रूप धारण कर लिया है कि एक दिन यह प्राकृतिक आपदाओं से भी भयंकर रूप लेकर हमारे सामने आएगी और तब हम सिर्फ भूतकाल को सोचकर सिर्फ अपना सिर ही धुनेंगें। इसके लिए हमारे पास कोई समाधान नहीं होगा। डॉ0 गणेश पाण्डेय लिखते हैं ''आज लड़की के जन्म लेते ही उनके परिवार के लोग मायूस हो जाते हैं। भ्रुण हत्या के द्वारा लड़कियों की हत्या गर्भ में ही कर दी जाती है। जिसका परिणाम सामने है।

आज देश में एक पुरुष के लिए महिला उपलब्ध नहीं है। अर्थात् महिलाओं की जनसंख्या पुरुषों से कम हो गई है। लिंग भ्रुण जाँच को कानूनी अपराध घोषित कर दिया गया है, लेकिन चोरी छिपे ऐसा हो रहा है।''[18]

''पीली आँधी (प्रभा खेतान) उपन्यास में सोमा का कोई भाई नहीं है। तीन बहने हैं। गुप्ता अंकल सोमा के पिता को कहते हैं अरे सोमा के भाई नहीं। अरे आप लोग क्या जिन्दगी भर बैठे रहेंगें? पीहर तो भाईयों के नाम से चलता है। अग्रवाल एकदम चुप हो गये थे। मिसेज अग्रवाल का सर ऐसे झुक गया मानो सारा अपराध उन्हीं का है।''[19]

इस प्रकार लेखिका ने इक्कीसवीं सदी की सोच को दर्शाया है कि आज भी समाज में पुरुष वर्ग की प्रधानता है।

वेश्यावृति

वेश्यावृत्ति से अभिप्राय देह व्यापार से है। इस व्यवसाय में धकेलने वाले उसके अपने ही होते हैं। वर्तमान में कानून के द्वारा वेश्यावृति को काफी हद तक समाप्त करने की कोशिश की गई है। स्वतन्त्रता पूर्व समाज में वेश्या सुधार की बात उठी थी। परन्तु उसके लिए कानूनी आधार नहीं था। वेश्यावृति के पीछे अधिकांशतः पारिवारिक, सामाजिक व आर्थिक कारण ही प्रमुख रूप से रहते हैं। वेश्यावृति में जब नारी प्रवेश करते हैं तो ग्राहक के द्वारा वस्तु समझकर ही उसका उपयोग किया जाता है। ग्राहक की दृष्टि में वह वस्तु है।

अनिता सभरवाल के 'तिरिया जात न जाने कोई उपन्यास में दिखाया है कि चंदा का रेप होने के बाद चंदा के माता–पिता उसे धन के लालच में जिस्मफरोशी करवाते हैं। चंदा के साथ रेप होने के बाद माँ–बाप उसे पीटते हैं। उसका छोटा भाई गर्म सलाखों से दागता है। फिर बिरादरी में उसे अछूत करार देकर उसका मुण्डन करवाते हैं। चंदा को मानसिक व शारीरिक अत्याचार सहन करने पड़ते हैं। चंदा को खाने से वंचित रखा जाता है, लेकिन माता–पिता उसके द्वारा पैसा कमाए जाने से सुखी हैं। लेखिका लिखती है।

यह बात भी किस औरत को औरत बनाने के लिए जरूरी होती है। इस परिवार की टूटी सी झोंपड़ी के सामने अक्सर मर्दों का जमघट लगा रहता है। बहुत कुछ कहते भी थे और सब कुछ कर भी लेते थे। उसके घर वाले भी अनदेखा कर रहे थे। सब कुछ क्यों कर रहे थे? इस हादसे का सच कोई नहीं जानता। कुछ महीने के बाद चंदा के बाप ने बेच दिया था और वह जिस्मफरोशी कर रही थी।''[20]

इस प्रकार बेटी को अपनो के द्वारा वेश्यावृति में झौका। आज कल समाज में बेटी का पवित्र रिश्ता भी अपवित्र हो गया है।

अर्थ के अभाव में 'फरिश्ते निकले' उपन्यास की पात्रा बेला का विवाह शुगर सिंह नाम के आदमी के साथ कर दिया जाता है जो उम्र में बेला से बड़ा है। बेला की माँ अर्थ की कमी होने के कारण ऐसा करती है बेला की माँ कहती है।[20]

''अपने करम पर हाथ धरकर बैठ गई अम्मा और बुदबुदाने लगी– मोंडी की कुछ समझने लायक उम्र होती तो कुछ कह सुनकर समझाती। ग्यारह–बारह साल का बच्चा तो माँ–बाप से लाड़ चाहता है ज़िद करता है। कितना अच्छा था जब रोटी के लाले थे। कपड़ा–लत्तों की कमी थी पर हम माँ–बेटी के कलेजे तो जुड़े थे।''

इस प्रकार धन के अभाव में नारी को शोषण का शिकार होना पड़ता है।

धार्मिक व राजनीतिक स्तर पर कुण्ठित नारी

इक्कीसवीं सदी में राजनीतिक शक्तियाँ धर्म को हथियार के रूप में इस्तेमाल कर रही हैं जो उनकी राजनीतिक महत्त्वकांक्षाओं की पूर्ति करता है। आज के भोगवादी वातावरण में धर्म एक बड़े व्यवसाय के रूप में उभर कर सामने आया है। पिछले कुछ वर्षों में घटी घटनायें इस ओर संकेत करती हैं। धार्मिक आश्रमों, मठों तथा केन्द्रों से गैर–कानूनी तथा आपराधिक गतिविधियों का संचालन हो रहा है। वर्तमान समय में अनेक धर्मगुरुओं के व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन की विसंगतियों के जो दृश्य हमारे सामने आये हैं वे हमें शर्मसार करते हैं। इक्कीसवीं सदी के हिन्दी उपन्यासों में आज की धार्मिक स्थिति का विकृत रूप दिखने को मिलता है। आजकल लोग धर्म के नाम पर लड़ रहे हैं।

'पायदान' (सोना चौधरी) उपन्यास की कशिश की माँ एक अंधविश्वासी औरत है। वह अपनी बेटी को एक ज्योतिषी के पास ले जाती है। लेकिन ज्योतिषी को घर पर बुलाकर जब पूजा पाठ की सामग्री रखवाकर लड़की को बुलाने के लिए कहा जाता है। कशिश को ज्योतिष की नीयत में खोट नज़र आ गया था। ज्योतिष के आचरण पर माँ भी शंकित है। परन्तु बोलती नहीं है। ज्योतिषी ने जिस कमरे में कशिश को बंद किया वह कमरा दो तरफ से खुलता था पर दोनों ही दरवाजे बंद थे और ज्योतिष कहता है–

तुम्हारे कंधों के बीच चंद्रमा का चिँ है। उसने मेरी कमीज का कालर पीछे से नीचे सरका दिया और खुल गए कंधों को सहलाने लगा''।[21]

इस प्रकार वर्तमान युग की लेखिका ने हमारे समाज के पण्डितों का ये आचरण दिखाकर यह बताने का प्रयास किया है कि किस तरह से धर्म के नाम पर नारी का मानसिक और शारीरिक शोषण होता है। 'फरिश्ते निकले'। उपन्यास में भरत सिंह के द्वारा बेला बहू का शोषण किया जाता है। वह एक राजनेता है। वह अन्य राजनेताओं को भी बेला को सौंपता है। भरत सिंह पाँच भाई भी बेला के साथ बलात्कार करते हैं। भरत सिंह कहता है।

''तुम्हे जिसके पास भेजा जा रहा है, उसका खुश होना जरूरी है। समझी?

समझती है वह। या इद्दी–पिद्दी नेता भी 'नेताजी' होते है। इन नेताजियों की अय्याशी में खलल न पड़ जाए। इसलिए बेला को अपने गाँव नहीं जाने दिया। माँ बीमार है तो रहे बीमार। बेला को तो दूर हालत में रम्भा, मेनका बनकर शयन कक्षों में उतरना है।''[22]

इस प्रकार भरत सिंह नेता बेला का स्वयं तो मानसिक व शारीरिक शोषण करता है वह उसे अन्य नेताओं को भी उसकी देह को परोसता है। इस तरह नारी का रजनीतिक स्तर पर शोषण होता है। राजनेता लोग

जो देश पर राज करने का सपना देखते हैं यदि वह ही नारी का शोषण करते हैं तो नारी का उत्थान कहाँ तक संभव है यह तो नेताओं की अय्याशी से पता लगाया जा सकता है। डॉ0 पुष्पाल सिंह लिखते हैं ''इसी समाज द्वारा दी गई यातनाओं, प्रताडणाओं में झुकती नहीं है, उनका भरपूर प्रतिकार करती है 'फरिश्ते निकले' उपन्यास की पात्रा बेला भी उसी तरह की पात्रा है जो सभी आर्थिक सामाजिक, राजनैतिक, सामाजिक कुण्ठाओं को झेलते हुए अंत में स्कूल खोलती है। जो आने वाली पीढ़ी के लिए जरूरी है। वह स्कूल के माध्यम से बच्चों को अच्छी शिक्षा देना चाहती है।

उदेश्य

वर्तमान शोध अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य यह जानना है कि 21वीं शताब्दी के उपन्यासों में नारी पात्रों के विशेष सन्दर्भ में कुंठा और संत्रास की स्थिति क्या है।

निष्कर्ष

इस प्रकार निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में दर्शाए गए नारी पात्रों के माध्यम से लेखक, लेखिकाओं ने यह दर्शाया है आज नारी मुक्ति आन्दोलनों के बावजूद भी आज की नारी कहने के लिए आधुनिक है लेकिन नारी की समस्याओं का अन्त नहीं हुआ है। वह आज भी परिवार, समाज के द्वारा दी जाने वाली पीड़ा को भुगत रही है। आज की नारी कुण्ठित हुए संत्रस्त भी है। आज की नारी अपनों के द्वारा ही छली जा रही है। इक्कीसवीं सदी की नारी के भी दहेज प्रथा, वेश्यावृति, कन्या भ्रुण हत्या, सम्बंधों के बीच टूटन, कामकाजी नारी को कई विपरीत परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। वह पुरुष प्रधान समाज में पुरुष की काम लोलुप दृष्टि, व्यंगयबाण कटाक्ष, घृणित प्रस्ताव आदि की शिकार भी होती है अन्त में कहा जा सकता है नारी ही नारी की पीड़ा को समझ सकती है। इसलिए उन्हें आने वाली पीढ़ी के माध्यम से नारी के प्रति दृष्टिकोण को बदलना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *प्रेमचन्द विजय वर्गीय, आधुनिक हिन्दी कवियों का सामाजिक दर्शन, पृ0 164–65*
2. *रूबी जुत्शी, शिवानी के कथा साहित्य में नारी का अस्तित्त्व, पृ0 258*
3. *वही, पृ0 259*
4. *रोमी शर्मा, भारतीय महिलाएँ : नई दिशाएँ, पृ0 84*
5. *देश हरियाणा, जुलाई–अगस्त 2016, पृ0 12*
6. *संजय कुन्दन, टूटने के बाद, पृ0 108*
7. *डॉ0 मुक्ता त्यागी – समकालीन महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी विमर्श, पृ0 128*
8. *मैत्रेयी पुष्पा, अगनपाखी, पृ0 17*
9. *डॉ0 मुक्ता त्यागी, समकालीन महिला उपन्यासकारों के उपन्यास में नारी–विमर्श पृ0 99*
10. *भीष्ण साहनी, कुन्तो पृ0–45, भीष्म साहनी, कुन्तो – राजकमल प्रकाशक, नई दिल्ली, संस्करण–2008।*
11. *डॉ मुक्ता त्यागी, समकालीन महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी विमर्श पृ0 155।*
12. *दैनिक भास्कर वर्ष 17, अं 52, 26 जून 2016 पृ0 1।*
13. *राम अहुजा, सामाजिक समस्याए, पृ0 240*
14. *गोपाल कृष्ण शर्मा 'फिरोजपूरी दामिनी जिन्दा है' पृ0 68–69।*
15. *गोपाल कृष्ण शर्मा 'फिरोजपुरी', दामिनी जिन्दा है, पृ0 110*
16. *अनिता सभरवाल, तिरिया जात न जाने कोई, पृ0 58*
17. *हंस, डॉ0 निर्मला जैन के लेख, कथा और नारी सन्दर्भ से, पृ0 40*
18. *डॉ0 गणेश पाण्डेय, भारतीय सामाजिक संस्थाएँ, पृ0 399*
19. *प्रभा खेतान पीली आँधी, पृ0 165*
20. *अनिता सबरवाल, तिरिया जात न जाने कोई, पृ0 83–84*
21. *मैत्रेयी पुष्पा, फरिश्ते निकले, पृ0 25*
22. *सोना चौधरी, पायदान, पृ0 35*
23. *मैत्रेयी पुष्पा 'फरिश्ते निकले, पृ0 80*